इकाई 9 भारत में औद्योगिक विकास : एक विंहगम दृष्टि

संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास

9.2.1 औद्योगीकरण क्या है?

9.2.2 औद्योगीकरण के पक्ष में तर्क

9.3 औद्योगिक वृद्धि के स्रोत

9.3.1 विकासशील देशों के औद्योगीकरण में बाधक तत्त्व

9.4 भारत में औद्योगिक विकास

9.4.1 औद्योगिक वृद्धि के आयाम

9.4.2 पुनर्जीवन की संभावनाएँ

9.5 औद्योगीकरण का ढाँचा

9.5.1 उद्योगों का कार्यात्मक ढाँचा

9.5.2 उद्योगों का स्वामित्व ढाँचा

9.6 लक्षण एवं कमियाँ

9.7 तीव्र औद्योगिक वृद्धि के सुझाव

9.7.1 सरकार की भूमिका

9.8 सारांश

9.9 अभ्यास प्रश्न

9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.11 शब्दावली

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आप :

- एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था में तीव्र गति से औद्योगीकरण के तर्क एवं आवश्यकता का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- तीव्र औद्योगीकरण के लिए अनुकूल वातावरण के संघटकों का निष्कर्ष निकाल सकेंगें;
- एक उभरती अर्थव्यवस्था के तीव्र औद्योगीकरण की सीमितताओं की पहचान कर सकेंगे;

- भारत द्वारा औद्योगीकरण एवं विकास का चलना प्रारंभ करते समय उसके द्वारा सामना किये गये 'प्रेरणा' एवं 'दबाव' के तत्त्वों को समझ सकेंगे;
- लगभग छः दशकों की वृद्धि प्राप्त कर लेने के बाद औद्योगिक अर्थव्यवस्था के बड़े लक्षणों एवं कमियों को अलग कर सकेंगे; तथा
- इस क्षेत्र में भावी कार्य हेतु कार्यसूची का निर्माण कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

विकास अर्थशास्त्रियों में यह सामान्य सर्वसम्मति है कि तीव्र गति से वृद्धि के लिए तीव्र औद्योगीकरण अत्यावश्यक है क्योंकि कृषि की अपेक्षा उद्योग में उत्पादकता स्तर बहुत अधिक होते हैं। इसके अतिरिक्त औद्योगीकरण को एक विकासशील अर्थव्यवस्था में आधारभूत आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के लिए एक महत्त्वपूर्ण नीति माना जाता है। आश्चर्य की बात नहीं है कि विकासात्मक लक्ष्य के रूप में तीव्र औद्योगीकरण को एक सार्वभौमिक मान्यता मिली हुई है। पर यह भी तथ्य है कि औद्योगीकरण से प्रदूषण, कच्चे माल की समय से पूर्व समाप्ति, बेरोज़गारी एवं आय वितरण में असमानताएँ उत्पन्न हो सकती हैं। भारत इस सार्वभौमिक प्रवृत्ति का अपवाद नहीं रहा है।

9.2 औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास

औद्योगीकरण को आर्थिक विकास का पर्याय माना जाने लगा है। आज विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश है जो अपनी कृषि एवं उसके उत्पादों के प्रसंस्करण के आधार पर पश्चिमी औद्योगिक रूप से विकसित देशों की प्रति व्यक्ति आय के स्तर को प्राप्त कर सका है। पेट्रोल उत्पादक राष्ट्र जैसे– सऊदी अरब, कुवैत तथा यू.ए.ई. इत्यादि प्रति व्यक्ति आय एवं विनिर्माण के अंश के बीच धनात्मक संबंधों को विशेष स्थिति या अपवाद प्रदर्शित करते हैं।

जो आवश्यक मापदंड एक विकसित अर्थव्यवस्था को विकासशील अर्थव्यवस्था से अंतर करने के लिए उपयोग किये जा रहे हैं वे औद्योगिक गतिविधियों में रोजगार प्राप्त श्रमशक्ति का अनुपात, औद्योगिक क्षेत्र से उत्पन्न होने वाला राष्ट्रीय उत्पाद के अंश से संबंधित होते हैं।

9.2.1 औद्योगीकरण क्या है?

औद्योगीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था का गुरुत्व केंद्र कृषि से हटकर उद्योग की ओर परिवर्तित हो जाता है।

औद्योगीकरण में दो बातें निहित होती हैं–

1) उत्पादन की तकनीकी रूप से श्रेष्ठ उन तकनीकों को अपनाना जो मूल कच्चे माल एवं मध्यवर्ती वस्तुओं को विनिर्मित वस्तुओं में रूपांतरण में सहायता करती हैं।

2) आर्थिक परिगणना, लेखा कर्म एवं प्रबंधन तकनीकों इत्यादि जैसे प्रबंधन एवं संगठन की आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करना।

9.2.2 औद्योगीकरण के पक्ष में तर्क

निम्नलिखित तत्त्व तीव्र आर्थिक विकास के साधन के रूप में तीव्र औद्योगीकरण के अनुकूल होते हैं।

क) **श्रम की उत्पादकता**

निम्नलिखित में से एक या अधिक कारणों की क्रियाशीलता से औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादकता अपेक्षाकृत अधिक होती है।

i) अपेक्षाकृत अधिक पूँजी प्रधानता का पाया जाना,

ii) उत्पादन की निरंतरता,

iii) अपेक्षाकृत अधिक विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन

iv) प्राकृतिक तत्त्वों पर कम निर्भरता

v) विनिर्माण क्षेत्र में आंतरिक एवं बाह्य मितव्ययिताओं की अपेक्षाकृत अधिक संभावना।

इसके अतिरिक्त, कृषि की अपेक्षा विनिर्माण गतिविधियों में तकनीकी संबंधों में तीव्र गति से परिवर्तन होता है। अतः यदि एक विकासशील अर्थव्यवस्था को निर्धनता से बाहर निकालने का कोई गंभीर प्रयास करना होता है तो भौतिक एवं वित्तीय दोनों प्रकार के संसाधनों के औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग की ओर अपेक्षाकृत अधिक दिशा परिवर्तन के रूप में परिवर्तित होना चाहिए।

ख) **रोज़गार सृजन**

औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि से अधिक रोज़गार अवसरों का सृजन करना संभव होगा तथा इस प्रकार कम उत्पादक व्यवसायों से श्रमिकों को आकर्षित करेगा। यह प्रक्रिया राष्ट्रीय उत्पादन, क्रयशक्ति एवं समग्र उपभोग व्यय में वृद्धि करेगा जो क्रमशः समग्र माँग में वृद्धि करेगा तथा अपेक्षाकृत अधिक रोज़गार अवसरों का सृजन करने में माध्यम बनेगा।

ग) **अतिरेक जुटाना**

एक विकासशील अर्थव्यवस्था के विकास में एक बड़ी सीमितता आवश्यकताओं की वित्त व्यवस्था के लिए पर्याप्त संसाधनों की कमी होती है। संसाधनों की अपर्याप्तता दो परस्पर संबंधित तत्त्वों का परिणाम होता है– (i) एक विकासशील अर्थव्यवस्था में संसाधनों, राष्ट्रीय उत्पाद एवं बचत का निरपेक्ष आकार कम होता है, तथा (ii) अतिरेकों को जुटाना संभव नहीं होता है। यद्यपि संसाधनों की अपर्याप्तता की समस्या सभी क्षेत्रों में सामान्य रूप से लागू होती है किन्तु कृषि क्षेत्र में संसाधनों को जुटाने की समस्या अनोखी है जहाँ से राष्ट्रीय आय का सबसे बड़ा भाग उत्पन्न होता है। इस क्षेत्र में अतिरिक्त बचतों को जुटाने के कार्य इस तथ्य से कठिन बना दिया जाता है कि इस उद्देश्य से कोई भी उचित संगठनात्मक ढाँचा विद्यमान नहीं है। अर्थव्यवस्था के औद्योगिक क्षेत्र में इस प्रकार का ढाँचा अधिक सरलतापूर्वक प्रदान किया जा सकता है।

अतः औद्योगीकरण पर संसाधनों का संकेन्द्रण करने से आर्थिक विकास की गति में शीघ्रता लाई जा सकती है।

9.3 औद्योगिक वृद्धि के स्रोत

1) वृद्धि के प्रतिष्ठित सिद्धांतों ने वृद्धि के निर्धारक तत्त्वों के रूप में भौतिक पूँजी संचय की भूमिका को स्वीकार किया था। वृद्धि के हैरड-डोमर मॉडल में वृद्धि प्रक्रिया की व्याख्या करने में प्रभावपूर्ण मांग एवं उत्पादक क्षमता के सृजन में भौतिक पूँजी एवं बचतों के प्रभाव पर अधिक जोर दिया गया।

2) 1950 के दशक के अंत में वृद्धि की गणना के ढाँचे में सोलो द्वारा वृद्धि प्रक्रिया में उत्पादकता की भूमिका को स्वीकार किया गया।

3) 1980 के दशक के अंत में अंतर्जनित वृद्धि सिद्धांत के उद्‌भव ने वृद्धि प्रक्रिया को सतत् बनाये रखने में ह्रासमान प्रतिफल को कम करने वाले प्रभावों की क्षतिपूर्ति करने के लिए साधन संचय के साथ मानवीय कुशलता एवं तकनीक में निरंतर प्रगति की भूमिका की ओर ध्यान आकर्षित किया।

9.3.1 विकासशील देशों के औद्योगीकरण में बाधक तत्त्व

एक विकासशील अर्थव्यवस्था में औद्योगीकरण की प्रक्रिया को अनेक रुकावटों का सामना करना पड़ता है जिनका क्रमबद्ध रूप से समाधान एवं उन्हें हटाया जाना चाहिए।

क) **आर्थिक तत्त्व**

i) विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में पूँजी की दुर्लभता होती है जो प्रति व्यक्ति आय के न्यून स्तर एवं न्यून उत्पादकता की परिणाम होती है। पूँजी की दुर्लभता उद्योग एवं आधारभूत ढाँचें में विनियोग पर विपरीत प्रभाव डालती है।

ii) प्रकृति से विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के पास परिवहन एवं संचार, जल एवं ऊर्जा इत्यादि जैसे आधारभूत ढाँचे की पर्याप्त सुविधाएँ नहीं होती हैं।

iii) उप-उत्पाद का उपयोग करने वाले उद्योगों या वर्तमान उद्योगों की कमी होने के परिणामस्वरूप एक बर्बाद एवं खराब अर्थव्यवस्था अस्तित्त्व में आ जाती है।

iv) विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में ऐसी उचित संस्थाएँ नहीं होती हैं जो श्रमिकों की कार्यकुशलता में सुधार करने के लिए उन्हें शिक्षा एवं प्रशिक्षण दे सकें।

v) मशीनों के उपयोग में मरम्मत सुविधाओं की कमी अन्य बाधा होती है।

vi) उचित साख प्रदान करने, सुदृढ़ बैंक व्यवस्था एवं बीमा सुरक्षा इत्यादि की विशिष्ट संस्थाओं की कमी औद्योगिक विनियोग एवं गतिविधियों में बाधा के रूप में कार्य करती है।

vii) समुचित तकनीक की कमी द्वारा भी औद्योगिकीकरण में बाधा उत्पन्न हो सकती है। अधिकांश विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में विकसित देशों में विकसित तकनीकों की नकल करने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार की तकनीकें श्रम के स्थान पर पूँजी के प्रतिस्थापन को प्रोत्साहित करती हैं। इस प्रकार की जटिल तकनीकों को इस आधार पर उचित माना जाता है क्योंकि वे इतनी अधिक उत्पादक होती हैं कि उससे भविष्य में प्रति इकाई उत्पादन लागतों में अन्यथा की अपेक्षा कमी होने की संभावना होती है। तथापि, भावी लाभ अपेक्षाकृत उच्च स्तर के तकनीकी

एवं प्रबंधकीय कार्यकुशलता की कमी के कारण कभी भी प्राप्त नहीं होते हैं जिन्हें जटिल तकनीक के साथ विकसित होना चाहिए।

viii) अनेक स्थितियों में एक विकासशील अर्थव्यवस्था को बाजार के बहुत छोटे आकार का सामना करना पड़ सकता है जो आर्थिक रूप से व्यवहार्य स्तर पर उत्पादन की खपत के लिए पर्याप्त नहीं होती हैं। यह न्यून उत्पादकता आय के न्यून स्तर के कारण पर्याप्त क्रयशक्ति की कमी के कारण प्राथमिक रूप से उत्पन्न हो सकती है।

ख) **सामाजिक-जनांकिकीय तत्त्व**

औद्योगीकरण में बाधक जनांकिकीय तत्त्वों में से सबसे महत्त्वपूर्ण है तेज़ी से बढ़ती हुई जनसंख्या। यह दो प्रकार से कार्य करती हैः

i) तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या से अभिप्राय अर्थव्यवस्था के उपभोग स्तर में तीव्र वृद्धि से होता है। इन अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादकता के न्यून होने तथा उसमें बहुत धीमी दर से वृद्धि होने के कारण बढ़ते हुए उपभोग स्तर के कारण शायद ही बचतों के रूप में कोई अतिरेक होता है। अपर्याप्त बचत विनियोगों को असंभव बना देती है।

ii) जनसंख्या वृद्धि के साथ श्रमशक्ति के आकार में भी वृद्धि होती है। वैकल्पिक रोज़गार अवसरों में भी वृद्धि होती है। वैकल्पिक रोज़गार अवसरों की अनुपस्थिति की स्थिति में बढ़ी हुई श्रमशक्ति का एक बड़ा भाग अपने लिए कृषि में रोजगार प्राप्त कर लेता है। इसकी इस क्षेत्र की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डालने की प्रवृत्ति होती है। कृषि क्षेत्र में न्यून उत्पादकता के उद्योग के लिए दो अभिप्राय होते हैं :

   – चूँकि कुल जनसंख्या के एक बड़े भाग को ग्रामीण क्षेत्र रोजगार प्रदान करता है अतः बचतों के एक बड़े भाग का मूल इस स्रोत से हो सकता है। किन्तु जब कृषि में उत्पादकता का स्तर कम होता है तो इसमें ऐसा नहीं होता है।

   – उद्योग कृषि पर निर्भर करता है जो औद्योगिक उत्पादों की माँग का बड़ा स्रोत होती है। किन्तु न्यून उत्पादकता एवं इसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में न्यून क्रयशक्ति और अधिक औद्योगीकरण को निरुत्साहित करते हैं क्योंकि घरेलू बाजार इतना पर्याप्त नहीं होता कि औद्योगिक गतिविधियों को व्यवहार्य बनाया जा सके।

जहां तक सामाजिक तत्त्वों का संबंध है, एक विकासशील अर्थव्यवस्था में सामाजिक संगठन तथा सामाजिक दृष्टिकोण ऐसे होते हैं जो औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि में बाधक होते हैं। ये श्रम, पूँजी एवं साहसिक योग्यता जैसे विभिन्न उत्पादक तत्त्वों की पूर्ति को प्रभावित करने के माध्यम से कार्य करते हैं।

ग) **प्रशासनिक तत्त्व**

i) सामान्यतः प्रशासन की अकुशलता से सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की दुर्व्यवस्था एवं हानि उत्पन्न हो जाती है।

ii) कर नीति, विदेशी विनिमय दरों, सीमा एवं उत्पाद शुल्क, व्यापार नियंत्रण एवं

लाइसेंस देने की नीति में बार-बार परिवर्तन होने से विनियोक्ताओं के मस्तिष्क में अनिश्चितता उत्पन्न होती है जो नये विनियोग करने में अनिच्छुक होते हैं।

iii) अनुचित एवं दोषपूर्ण श्रम कानून खराब लोक प्रशासन का अन्य तत्त्व है जो इन देशों में तनाव उत्पन्न करता है।

घ) **अंतर्राष्ट्रीय तत्त्व**

i) आयातित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा

ii) विकसित देशों द्वारा सीमा शुल्क की बाधाओं का अध्यारोपण

iii) दुर्लभ कच्चे माल, तकनीकी ज्ञान, मशीन एवं संयंत्र इत्यादि के आयातों की अधिक लागतें।

तथापि, जैसा कि हम सब अवलोकन करेंगे, ये कठिनाइयाँ अजेय नहीं होती हैं। उनके सरल समाधान की आवश्यकता हो सकती है। कुछ अन्य समय में राज्य द्वारा कुछ नियोजित प्रयास आवश्यक हो सकते हैं। पुनः एक बार एक विकासशील अर्थव्यवस्था में औद्योगीकरण का एक सफल कार्यक्रम इस प्रकार की गतिविधियों में राज्य की सक्रिय भागीदारी के बिना पूरा नहीं किया जा सकता।

बोध प्रश्न 1

1) औद्योगीकरण की परिभाषा बताइये। तीव्र औद्योगीकरण क्यों वांछित है?

.....

.....

.....

2) उन तत्त्वों को संक्षेप में बताइए, जो एक विकासशील अर्थव्यवस्था में औद्योगीकरण के पक्ष में है।

.....

.....

.....

9.4 भारत में औद्योगिक विकास

भारत तृतीय विश्व में पथ-प्रदर्शकों में से एक था जो आधुनिक आधारभूत ढाँचे, सभी मौसम की सड़कों, रेलवे एवं सिंचाई इत्यादि के आधार पर आगे बढ़ रहा था जिसकी नींव ब्रिटिश साम्राज्य में रख दी गयी थी। भारतीय उद्योग स्पष्ट रूप से भारत के सापेक्षिक लाभ को प्रदर्शित करते थे। भारत के औद्योगिक कार्य-निष्पादन एवं विनिर्माण कार्य संपादन विश्व में सर्वोत्तम थे।

स्वतंत्रता के बाद भारत ने अपनी औद्योगिक आत्मनिर्भरता के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपनी पीठ एक खुली अर्थव्यवस्था से पीछे की ओर मोड़ ली। जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक ढाँचा पर्याप्त विस्तृत आधार पर हो गया है। पिछले छह दशकों

की अवधि में औद्योगिक वृद्धि के ढाँचे में परिवर्तनों को दो बड़े शीर्षकों के अंतर्गत परीक्षण एवं विश्लेषण किया जा सकता है– (i) औद्योगिक वृद्धि के आयाम, (ii) औद्योगीकरण का ढाँचा।

9.4.1 औद्योगिक वृद्धि के आयाम

1950 के दशक से अब तक की संपूर्ण अवधि को आठ विशिष्ट उप-अवधियों में विभाजित किया जा सकता है।

विस्तृत रूप से, इन्हें दो श्रेणियों में पुनः उप विभाजित किया जा सकता है– (क) सुधारों के पूर्व की अवधि, (ख) सुधारों के पश्चात् की अवधि।

क) **सुधारों के पूर्व की अवधि**

I पहले का वृद्धि चरण : 1965-66 तक

प्रथम दो दशकों, विशेष रूप से द्वितीय एवं तृतीय योजना की अवधि में औद्योगिक वृद्धि तीव्र थी। द्वितीय योजना में देश में मूल औद्योगिक शक्ति प्राप्त करने के मामले में जिस औद्योगिक क्रांति का प्रारंभ हुआ, वह भारत के औद्योगिक इतिहास में स्मारक चिन्ह के रूप में बनी रहेगी। यह गति तृतीय योजना में भी निरंतर बनी रही। इस अवधि में औद्योगिक वृद्धि की ऊँची दरें निम्न कारणों से थीं–

i) अधिक नीतियों में औद्योगीकरण पर जोर,

ii) औद्योगीकरण की भारी उद्योग उन्मुख रणनीति एवं औद्योगिक नीति एवं नियोजन में औद्योगिक वृद्धि का सर्वोच्च उद्देश्य का अनुपालन,

iii) प्रथम दो निर्णयों के कार्य पालन के रूप में औद्योगिक क्षेत्र में क्षमताओं का सृजन एवं पर्याप्त विनियोजन करना।

iv) शहरी क्षेत्रों के उपभोक्ताओं तथा समुदाय के सापेक्षिक रूप से बेहतर वर्ग द्वारा विभिन्न नये उत्पादों की माँग में वृद्धि होना।

v) आर्थिक विचार की गति जो शानदार तो नहीं किंतु अब घरेलू बचत एवं विदेशों से संसाधनों के आगमन के अस्वाभाविक संयोग द्वारा संभव हो गयी थी। वृद्धि की इस अवधि को 'नियंत्रण सहित औद्योगिक वृद्धि' का नाम दिया गया है।

II मंदी का चरण : 1970 का दशक

तृतीय योजना के बाद औद्योगिक वृद्धि धीमी पड़ गई। इस अवधि में उद्योग केवल स्थैतिक ही नहीं बल्कि 'स्पष्ट रूप से विशिष्ट वर्ग उन्मुख उत्पादन ढाँचा' अस्तित्त्व में आ गया। इसका सबसे अधिक हानिकारक पहलू महत्त्वपूर्ण मज़दूर वर्ग की वस्तुओं की प्रति व्यक्ति घरेलू उपलब्धता में निरंतर कमी एवं तथा गरीबी रेखा के नीचे लोगों की संख्या में वृद्धि के रूप में था। संरचनात्मक अवनति दो चरणों में हुई।

i) औद्योगिक उत्पादन में थोड़ी-सी वृद्धि की अपेक्षा भी मूल एवं पूँजीगत वस्तुओं की वृद्धि धीमी थी।

ii) जहाँ वृद्धि थोड़ी से अधिक थी अधिकांश उद्योग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विशिष्ट वर्ग उन्मुख उपभोग वस्तु क्षेत्र से संबंधित थीं।

मानव निर्मित धागे, पेय, सुगन्ध एवं सौंदर्य प्रसाधन, वाणिज्यिक एवं कार्यालय घड़ियों, वस्त्र की बारीक श्रेणियों इत्यादि के उत्पादन में गैर-आनुपातिक रूप से अत्यधिक वृद्धि

हुई। यह तत्त्व जन समुदाय की उपभोग वस्तुओं के लिए विनियोग योग्य कोषों के आबंटन की लागत पर उभर कर आयी।

इस प्रकार औद्योगिक संरचना में एक असंतुलन उत्पन्न हो गया ।

उद्योगों की धीमी गति से वृद्धि के कारण : इस अवधि में उद्योगों की धीमी गति से वृद्धि के अनेक कारण दिये गये हैं। इन व्याख्याओं में पर्याप्त विस्तृत बातें सम्मिलित हैं। एक ओर वे लोग हैं जिन्होंने धीमी गति का कारण उन आवधिक धक्कों में निर्धारित किया जिन्हें अर्थव्यवस्था को 1965 एवं 1971 के युद्धों, 1973 में तेल संकट तथा 1965 एवं 1966 में सूखों के रूपों में सहन करना पड़ा। उनके अनुसार इन्हीं धक्कों ने ही अर्थव्यवस्था को गति में तीव्रता प्राप्त करने तथा अपेक्षाकृत अधिक औद्योगिक वृद्धि प्राप्त करने से रोका। किंतु दूसरी ओर, कुछ अर्थशास्त्रियों ने जोरदार शब्दों में मत व्यक्त किया कि औद्योगिक वृद्धि में संकट की जड़ विकास के उस मार्ग में है जिसे भारत ने अपनाया है तथा यदि मौलिक संपत्ति संबंधों एवं आय वितरण की संरचना में परिवर्तन नहीं किया जाता है तो इसके समाधान का कोई रास्ता नहीं है।

विभिन्न व्याख्याओं में से चार बड़े तत्त्व जिन्होंने औद्योगिक स्थैतिकता में योगदान किया उनकी पहचान निम्न प्रकार की जा सकती है।

i) कृषीय आय में धीमी गति से वृद्धि एवं उनकी औद्योगिक वस्तुओं की माँग सीमित करने पर प्रभाव;

ii) 1960 के दशक के मध्य के पश्चात् सार्वजनिक विनियोग में मंदी तथा उसका आधारभूत ढाँचा संबंधी विनियोग पर विशिष्ट प्रभाव;

iii) आधारभूत ढाँचा क्षेत्र का घटिया प्रबंधन, जिसके परिणामस्वरूप गंभीर आधारभूत ढाँचा संबंधी सीमितताएँ उत्पन्न हुईं;

iv) घरेलू औद्योगिक नीतियों एवं व्यापार नीतियों को सम्मिलित करते हुए औद्योगिक नीतिगत ढाँचा एवं अर्थव्यवस्था में उच्च लागत औद्योगिक ढाँचे के सृजन पर प्रभाव।

इसके अतिरिक्त, न्याय के दृष्टिकोण से यह महत्त्वपूर्ण है कि नियोजन के अनुशासन में कमी, विनियोग के लक्ष्यपूर्ण स्तर में पर्याप्त कमी तथा बचतों को अनिवार्य करने की इच्छा जैसे अधिक सरल व्याख्याओं को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

III 1980 के दशक में पुनर्जीवन

1980 के दशक का प्रांरभ होने के साथ औद्योगिक परिवेश में एक परिवर्तन उत्पन्न हुआ। इस अवधि में औद्योगिक वृद्धि की दर में वृद्धि हुई तथा पूर्व अवधि के लक्षण के रूप में स्थैतिकता पर विजय प्राप्त की जा सकी।

जिन बड़े तत्त्वों ने इस हानि से लाभ में परिवर्तन में योगदान किया उनकी संक्षिप्त विवेचना निम्न प्रकार की जा सकती है।

i) औद्योगिक नीति में उदारीकरण, जो प्रक्रिया 1980 के दशक में प्रारंभ हुई तथा 1985 से गति पकड़ ली।

ii) 1980 के दशक की अवधि में सार्वजनिक विनियोग 1970 के दशक की अपेक्षा बहुत अधिक स्तर पर था जिसने भारतीय उद्योग की वृद्धि निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

iii) निजी निगमित विनिर्माण क्षेत्र द्वारा किये गये विनियोग उललेखनीय सुधार हुआ।

iv) 1980 के दशक में पूँजीगत वस्तुओं के आयातों में अत्यधिक वृद्धि से उद्योग में बढ़े हुए विनियोग की पुष्टि हो गयी।

v) उद्योग में तीव्र विनियोग में योगदान 'उदार राजकोषीय शासन प्रणाली' नामक व्यवस्था से हुआ। इस शासन प्रणाली से हमारा अर्थ एक ऐसी शासन प्रणाली से होता है जिसमें परम्परागत राजवित्त के अनेक सामान्य नियमों का परित्याग कर दिया गया था। इस प्रकार की शासन प्रणाली का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण वर्ष प्रति वर्ष अधिक बजट घाटे को बनाये रखना था। दूसरा लक्षण प्रायः ऊँची ब्याज दरों पर बड़े पैमाने पर उधार लेना था तथा अंत में बचतों को कम करने का प्रोत्साहन था। विशेष रूप से, 1980 के द्वितीय अर्धदशक में ये सभी तत्त्व हुए।

vi) सामान्य रूप से सकल घरेलू पूँजी निर्माण एवं विशेष रूप से सार्वजनिक विनियोग की दर एवं ढाँचे में सुधार के परिणामस्वरूप आधार ढाँचे के उद्योगों का बेहतर कार्य निष्पादन।

vii) गैर-कृषि के पक्ष में अंतर्क्षेत्रीय व्यापार की शर्तों में कमी।

viii) 1980 के दशक की अवधि में औद्योगिक पुनर्जीवन को प्रोत्साहित करने में राज्य की भूमिका उत्साहवर्धक रही है। अर्थात् यह विशाल प्रशासनिक साम्राज्य के सृजन द्वारा तेज़ी से बढ़ते मध्यम वर्ग के लिए रोजगार एवं आय के प्रावधान जैसे अप्रत्यक्ष माध्यम से हुआ (आज मध्यम वर्ग की जनसंख्या लगभग 30 करोड़ है जो फ्रांस एवं ग्रेट ब्रिटेन की सम्मिलित कुल जनसंख्या की अपेक्षा अधिक है।)

इस प्रकार औद्योगिक वृद्धि के इस चरण तथा नियोजित विकास के डेढ़ दशकों में होने वाली औद्योगिक वृद्धि में अंतर यह है कि राज्य द्वारा सृजित प्रत्यक्ष रूप से आयों के माध्यम से इसकी मध्यस्थता थोड़ी और नीचे की आय स्तर तक वस्तुओं की माँग के प्रसारण के अंश की अनुमति प्रदान करता है जो इससे पूर्व जनसंख्या के केवल सबसे अधिक आय वर्ग द्वारा उपभोग कर ली जाती थी।

वृद्धि की गुणवत्ता : वृद्धि की गुणवत्ता पर टिप्पणी के बिना औद्योगिक पुनर्जीवन का विश्लेषण अपूर्ण होगा। 1980 के दशक में उत्पन्न संरचनात्मक विकारों का भी व्यष्टि स्तर पर प्रभाव था। द्वितीयक क्षेत्र के अंतर्गत विशिष्ट वर्ग उन्मुख उत्पादों का अंश स्पष्ट रूप से अन्य की अपेक्षा अधिक तेज़ी से बढ़ा है।

इस सूक्ष्म स्तर पर संरचनात्मक विकास 1980 के दशक में भी बना रहा किन्तु समष्टि स्तर पर विकार को आवश्यक नियंत्रित कर लिया गया। समयावधि के साथ औद्योगिक कार्य निष्पादन का एक और भी लक्षण यह था कि 1980 के दशक में मूल्य वर्धित वस्तुओं की वृद्धि दरें 1970 के दशक की दरों की अपेक्षा अधिक थीं।

मंदी : तथापि, 1980 के दशक के अंत तक औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर कम हो गयी। औद्योगिक वृद्धि में कमी का बड़ा कारण संपूर्ण बजट घाटे को कम करने की आवश्यकता से उत्पन्न पूँजीगत व्यय में वृद्धि की अपेक्षाकृत कम दरें थी। मंदी के अन्य उत्तरदायी तत्त्वों को संक्षेप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है : (i) कच्चे माल एवं अन्य आगतों की कमी, (ii) आधारभूत ढाँचे संबंधित कठिनाइयाँ, (iii) पुरानी मशीन एवं उसके परिणामस्वरूप ऊँची लागत।

ख) **सुधारों के बाद की अवधि**

अर्थव्यवस्था पर औद्योगिक वृद्धि के संपूर्ण प्रभाव/योगदान का अध्ययन नीचे तालिका 9.1 में प्रस्तुत कुछ संक्षिप्त आंकड़ों की सहायता से किया जा सकता है।

तालिका 9.1 : वास्तविक अर्थव्यवस्था से संबंधित सुधारों के बाद की अवधि में कुछ चुने हुए समष्टिपरक सूचक

		औसत 1990-91 से 1999-2000	औसत 2000-01 से 2009-10	2010-11
I	**सकल वास्तविक सकल घरेलू विनियोग (GDI)**	5.7	7.3	8.5
	क) कृषि	3.2	2.4	6.6
	ख) उद्योग – विनिर्माण	5.7	7.3	7.5
	ग) सेवाएँ	5.6	8.0	8.3
	माँग पक्ष समग्र	7.1	9.0	9.2
	घ) अंतिम उपयोग व्यय			
	ङ) सकल स्थिर पूँजी निर्माण	5.0	6.3	8.6
		7.2	10.2	8.6
II	**GDP में अंश**			
	क) कृषि	28.4	19.4	14.4
	ख) उद्योग	20.1	20.0	20.0
	ग) सेवाएँ	51.5	60.0	65.6
III	**औद्योगिक उत्पादन सूचकांक**	6.3	7.4	8.2
	क्षेत्रवार			
	क) खनन	3.4	4.3	5.2
	ख) विनिर्माण	6.5	8.0	9.0
	ग) विद्युत	7.0	4.8	5.5
	उपयोग आधरित			
	क) मूल वस्तुएँ	6.3	5.6	6.0
	ख) पूँजीगत वस्तुएँ	5.5	13.3	14.8
	ग) मध्यवर्ती वस्तुएँ	7.5	6.2	7.4
	घ) उपभोग वस्तुएँ	5.9	8.2	8.6
IV	**सार आधारभूत ढाँचा उद्योग**	6.3	5.5	5.8

अब इसके पश्चात् हम, तालिका 9.1 के आँकड़ों का उपयोग औद्योगिक वृद्धि में प्रवृत्तियों एवं उससे उत्पन्न औद्योगीकरण के ढाँचे का विश्लेषण करेंगे।

IV 1991-94 की अवधि में मंदी

1991-92 की अवधि एवं उसके पश्चात् 1992-93 की अवधि में औद्योगिक उत्पादन में कमी आ गयी। इसके लिए माँग एवं पूर्ति तत्त्व दोनों ही उत्तरदायी थे।

क) **पूर्ति पक्ष पर महत्त्वपूर्ण तत्त्व थे**– आयात दबाव, नकद सीमा आवश्यकता एवं रुपये के विनिमय मूल्य को नीचे की ओर समायोजन तथा सख्त मुद्रा नीति के कारण आयातों की लागत में वृद्धि।

ख) **माँग पक्ष पर महत्त्वपूर्ण तत्त्व थे**– स्फीतिकारी दबाव, सार्वजनिक व्यय में कमी तथा सख्त राजकोषीय अनुशासन के कारण प्रभावपूर्ण माँग में सुस्पष्ट गिरावट। ये सभी तत्त्व परस्पर संबंधित हैं तथा एक से दूसरा उत्पन्न हुआ।

1991-93 की अवधि में औद्योगिक उत्पादन में गिरावट विस्तृत होकर 1993-94 में भी बनी रही।

1992-93 के उत्तरार्ध एवं 1993-94 की अवधि में क्रियाशील ताकतें स्पष्ट रूप में उनसे भिन्न थीं जो सुधार अवधि के तुरंत पश्चात् क्रियाशील थीं। इस बाद की अवधि में साख नियंत्रण को लगभग समाप्त कर दिया गया था। ब्याज की दरों को स्पष्ट रूप से नीचे लाया गया था। आयात दबाव कभी भी 1991-92 जैसा गंभीर नहीं था तथा विदेशी विनिमय भंडार में अत्यधिक वृद्धि हो गयी थी। विपरीत तत्त्वों की पहचान निम्न प्रकार से की जा सकती है :

i) उदारीकृत विनिमय दर प्रबंधन प्रणाली (LERMS) तथा बाद में UERS प्रारंभ करने के परिणामस्वरूप मध्यवर्ती वस्तुओं एवं कच्चे माल की बढ़ती हुई आयात लागतें;

ii) विदेशी उत्पादकों द्वारा घरेलू बाजार में महत्त्वपूर्ण मध्यवर्ती वस्तुओं के राशिपालन की उपस्थिति के आरोप के साथ सीमा शुल्क में कटौती;

iii) बढ़ती हुई स्फीतिकारी प्रवृत्तियाँ;

iv) प्रत्यक्ष विदेश विनियोग के आगमन से संबंधित अनिश्चितताएँ जिन्होंने घरेलू उत्पादकों को भी अपनी विनियोग योजनाएँ स्थापित करने तथा अपने वृद्धि कार्यक्रमों को गोदाम में बंद कर देने के लिए बाध्य कर दिया।

V पुनर्जीवन एवं बाद की मंदी – 1994-2002

1991-94 की अवधि में औद्योगिक वृद्धि की दर में मंदी केवल संक्रमणकारी ही बनकर रह गयी, जो अर्थव्यवस्था के समष्टि आर्थिक समायोजन के लिए सरकार द्वारा प्रारंभ किये गये स्थिरीकरण उपायों का तुरंत परिणाम था या यदि प्रसिद्ध अर्थशास्त्री के. एन. राज के शब्दों में कहा जाये तो –'जब गियर में परिवर्तन हो रहे हैं तथा नई दिशाएँ निर्धारित की जा रही हैं।' यह ध्यान देने योग्य है कि 1993-94 के उत्तरार्ध में आर्थिक वृद्धि की दर तेज़ होने लगी। प्रवृत्ति में परिवर्तन की व्याख्या निम्न तत्त्वों द्वारा की जा सकती है।

i) बढ़ा हुआ सरकारी व्यय/सार्वजनिक विनियोग; सरकारी व्यय माँग एवं पूर्ति पक्ष दोनों में वृद्धि के प्रोत्साहक प्रदान करते हैं। विकास व्यय आधारभूत ढाँचे की सीमितताओं को कम करता है जबकि उपभोग व्यय अल्पकालीन माँग पक्ष प्रोत्साहक प्रदान करता है;

ii) उत्पाद एवं सीमा शुल्क में कटौती;

iii) 1993-94 से निर्यात मात्रा में वृद्धि;

iv) कृषीय उत्पादन की वृद्धि में निरंतर स्थिरता;

v) SLR में तीव्र गति से कमी के कारण बैकिंग प्रणाली से कोषों की पूर्ति; और

vi) MODVAT को पूँजीगत वस्तुओं तक विस्तृत करना।

मंदी

औद्योगिक पुनर्जीवन वस्तुतः उल्लेखनीय था। इसने उद्योग एवं सरकार पर्याप्त सुखाभास का सृजन किया। तथापि, नीचे वर्णन किये जाने वाले कारणों से इस प्रकार के आशावाद की नींव मजबूत नहीं थी। 1996-97 में वृद्धि दर की गति धीमी पड़ गयी। तथा बाद में 1999-2000 में अल्पकालीन पुनर्जीवन को छोड़कर, 1997-2002 की अवधि तक गिरावट निरंतर बनी रही।

मंदी के लिए उत्तरदायी बड़े तत्त्वों को तीन भागों में समाहित किया जा सकता हैः (क) माँग की सीमितता, (ख) पूर्ति की सीमितता, तथा (ग) संरचनात्मक एवं चक्रीय तत्त्व।

क) माँग की सीमितता

माँग की सीमितताएँ न्यून विनियोग एवं न्यून उपभोक्ता माँग के रूप में उत्पन्न हुईं।

i) उद्योग में वास्तविक विनियोग जो 1995-96 में तेज़ी से बढ़ा था, उसके बाद अनेक कारणों से स्थैतिक हो गया जिन कारणों में राजनीतिक अस्थिरता, 1996-97 के बाद बढ़ता हुआ राजकोषीय घाटा जिसने वास्तविक ब्याज दर को अधिक बना रखा था तथा आर्थिक सुधारों में गति की हानि।

ii) 1990 के दशक के प्रारंभ में बड़े सुधारों के उत्पादकता में वृद्धि करने वाले प्रभाव 1997 तक कमज़ोर हो गये थे। यद्यपि सुधार पूरे दशक निरंतर बने रहे किंतु इन्होंने प्रारंभिक वर्षों का आकार प्राप्त नहीं किया। औद्योगिक नीति एवं निजीकरण में महत्त्वपूर्ण सुधार अपूर्ण बने रहे या उन पर कोई काम नहीं हुआ।

   – न्यून कृषीय वृद्धि एवं 1990 के दशक में वृद्धि में बढ़े हुए उतार-चढ़ाव एवं विशेष रूप से 1999-2000 एवं 2000-01 की अवधि में उत्पादन में निरपेक्ष गिरावट से ग्रामीण क्रय शक्ति गंभीर रूप से प्रभावित हुई है। इसके अतिरिक्त 1980 के दशक से भिन्न 1990 के दशक में विशेष रोज़गार कार्यक्रमों के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में कोषों के प्रवाह में संकुचन हुआ है।

   – भारतीय उद्योग को कृषि में गिरती हुई वृद्धि दर के कारण अर्थव्यवस्था के सममूल्य अंशों एवं जायदाद बाजारों में गिरावट से उत्पन्न ग्रामीण धन में पर्याप्त कमी हो जाने के कारण केवल कम क्रयशक्ति का सामना करना पड़ा। इसने औसत शहरी उपभोक्ता की व्यय करने की प्रवृत्ति में रुकावट उत्पन्न की। सार्वजनिक भविष्य निधि, बैंक जमा पर ब्याज दरों एवं पारस्परिक निधि से लाभांश प्रतिफल में गिरावट से शहरी उपभोक्ता व्यय से अनिच्छुक हो गया है।

   – आय के वितरण में बढ़ती हुई असमानताओं के स्पष्ट चिन्ह दिखायी पड़ते हैं। अपेक्षाकृत कम रोज़गार वृद्धि एवं रोज़गार की गुणवत्ता में गिरावट के कारण शहरी जनसंख्या के विशाल जनसमुदाय के हाथों में स्पष्ट रूप से क्रयशक्ति की घटती हुई संभावनाएँ थीं।

   – स्थापित क्षमता एवं समग्र माँग के बीच एक गंभीर बेमेल हुआ है।

iii) बड़े 'लटकते विनियोगों' को स्वीकृत एवं वास्तविक FDI में अंतर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। विदेशी निवेशकों से प्रतिस्पर्धा के डर को ध्यान में रखते हुए घरेलू निवेशक दूर रहे या उन्होंने अपने विनियोगों को ऐसे क्षेत्रों से स्थगित कर दिया जिसमें पहले से ही FDI स्वीकृत था अथवा वे FDI आने का अनुमान करते थे।

इन सब के साथ वैश्विक मंदी एवं विकसित देशों की मंदी को भी जोड़ा जा सकता है। इन सब बातों ने हमारे निर्यात उद्योगों की माँग को विपरीत रूप में प्रभावित किया।

ख) **पूर्ति की सीमितताएँ**

बड़ी पूर्ति सीमितताओं की पहचान निम्न प्रकार की जा सकती है :

i) आधारभूत ढाँचे में अवरोध समय के साथ अत्यधिक खराब हो गये, जो कीमत निर्धारण के सुधारों की कम प्रगति प्रदर्शित करता है।

ii) कुछ महत्त्वपूर्ण कृषि आगतों एवं उत्पादों की विकृत कीमत निर्धारण के साथ ग्रामीण आधारभूत ढाँचे की न्यून मात्रा एवं गुणवत्ता ने कृषि की वृद्धि को धीमा करने में कार्य किया।

iii) राजकोषीय अनुशासन में कमी ने भारत की 30 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या वाले राज्यों के लिए वृद्धि की संभावनाओं को सीमित कर दिया।

iv) 1997-98 का एशियाई संकट, 1998-99 की आर्थिक स्वीकृति, 1999-2001 की अवधि में अंतर्राष्ट्रीय तेल कीमतों में पुनः वृद्धि तथा अमेरिका की आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध की घोषणा इत्यादि ने संयुक्त रूप से अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण को सुधारों के प्रारंभिक चरण की अपेक्षा कम समर्थनकारी बना दिया।

ग) **संरचनात्मक एवं चक्रीय तत्त्व**

बड़े संरचनात्मक तत्त्वों की पहचान निम्न प्रकार की जा सकती है :

i) एकीकरण एवं अधिग्रहण के रूप में बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा के जवाब में उद्योग की समायोजन प्रक्रिया आवश्यकता से अधिक समय ले रही है।

ii) परिवहन, संचार एवं ऊर्जा क्षेत्र में सेवाओं की ऊँची लागतें एवं अपर्याप्त तथा अविश्वसनीय पूर्ति।

iii) कम मात्रा एवं पैमाने की मितव्ययितों का लाभ प्राप्त करने की अक्षमता, पुरानी तकनीक एवं प्रतिबंधात्मक श्रम कानूनों के कारण उद्योग में उत्पादकता के न्यून स्तर।

iv) ऑटोमोबाइल एवं जायदाद जैसे क्षेत्रों में कम कीमतों तथा अल्प एवं मध्यम काल में करों एवं शुल्कों में कमी की आशा के कारण सट्टे के उद्देश्य से अपेक्षाकृत कम माँग।

v) ऊँची वास्तविक ब्याज़ दरें।

बड़े चक्रीय तत्त्वों की पहचान निम्न प्रकार की जा सकती है :

क) आवधिक विनियोग चक्र, जो सरकार द्वारा 2004 तक पूर्वी एशियाई देशों के स्तर

तक सीमा शुल्कों को कम करने के निर्णय से सुदृढ़ हुए किंतु उन्होंने अपने विनियोग निर्णय स्थगित कर दिये।

ख) समिष्ट, ऑटोमोबाइल तथा इस्पात जैसे कुछ चक्रीय उद्योगों की माँग को प्रभावित करने वाले व्यापार चक्र।

ग) टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की समर्थनकारी माँग का न होना।

उपरोक्त चक्र e-व्यवसाय एवं e-वाणिज्य के प्रारंभ होने तथा लागतों में कमी करने के उद्देश्य से उद्योग द्वारा माँग एवं पूर्ति के बेहतर प्रबंधन के परिणामस्वरूप भंडारण स्तरों में कमी द्वारा सुदृढ़ किये गये हैं।

VI पुनर्जीवन एवं 2002-08 की अवधि में मजबूत वृद्धि

वर्ष 2002-03 धीमी गति से प्रारंभ हुआ। किन्तु 2003-04 में यह स्पष्ट हो गया कि एक मज़बूत पुनर्जीवन प्रक्रिया में है।

2004-05 में तथा पुनः 2005-06 में विनिर्माण क्षेत्र 9.1 प्रतिशत, 2006-07 की अवधि में 12.5 प्रतिशत तथा 2007-08 की अवधि में 9 प्रतिशत की दर से बढ़ा।

औद्योगिक वृद्धि में तीव्र गति से वृद्धि अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण हो सकी। जिनमें से एक 2000-01 में 23.5 प्रतिशत से बढ़कर बचत दरों में 2007-08 में 37.7 वृद्धि का होना था। इस वृद्धि का अधिकांश भाग निगमित क्षेत्र के हानि से लाभ में परिवर्तन एवं जनता की बचतों से प्राप्त हुआ। बचत दरों में वृद्धि होने से अर्थव्यवस्था अपेक्षाकृत बिल्कुल ऊँचे विनियोग दर की ओर अग्रसर हो गयी। द्वितीय महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन निर्यात प्रस्पिर्धा शक्ति में वृद्धि के रूप में था जो निर्यातों के बढ़ते हुए अंश के रूप में प्रतिबिंबित हुआ। कुल निर्यात अनुपात (व्यापार + अदृश्य प्राप्तियाँ/GDP) 2000-01 में 16.09 प्रतिशत से बढ़कर 2007-08 में 33.2 प्रतिशत हो गया। हाल ही के वर्षों में तृतीय परिवर्तन वित्तीय गहराई के रूप में है। बैंक साख में तीव्र गति से वृद्धि होने के आधार पर बैंक परिसंपत्तियाँ/GDP का अनुपात 2000-01 में 48 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में 80 प्रतिशत हो गया। इन तीनों संरचनात्मक परिवर्तनों में एक तत्त्व सभी में सामान्य है, वह है अपेक्षा कम ब्याज दरें। ब्याज दरों में कमी ने राजकोषीय सुदृढ़ीकरण में सहायता की। इसने फर्मों की प्रतिस्पर्धा शक्ति में तीव्र गति से वृद्धि कर दी तथा इसने फुटकर साख में विशाल वृद्धि उत्पन्न किया। अपेक्षाकृत कम ब्याज दरें चालू एवं पूँजीगत दोनों खाते में आगमन में वृद्धि के कारण संभव हुई।

अन्य शब्दों में, यह स्पष्ट है कि औद्योगिक क्षेत्र ने पूँजी की मात्रा में नये योगदान के माध्यम से उत्पन्न तीव्र माँग की दशाओं का प्रत्युत्तर दिया। पूँजी की मात्रा के आधुनिकीकरण, आयात शुल्कों तथा अन्य करों में कमी/विवेकीकरण, अर्थव्यवस्था का अपेक्षाकृत अधिक खुलापन, अधिक FDI का आगमन, अपेक्षाकृत अधिक प्रतिस्पर्धी दबाव, सूचना तथा संचार तकनीक में बढ़ा हुआ विनियोग तथा अपेक्षाकृत अधिक वित्तीय गहराई ने भी उद्योग की उत्पादकता लाभ में योगदान किया। इसके परिणामस्वरूप सेवा क्षेत्र के साथ उद्योग अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण वृद्धि संचालक बनता गया। व्यापार, परिवहन, संचार एवं भवन निर्माण जैसी अनेक सेवाएँ उद्योग से जुड़ी हुई हैं।

VII 2008-09 के बाद मंदी

तिमाही दर में मंदी 2007-08 के प्रथम तिमाही से प्रारंभ हुई। खनन क्षेत्र द्वारा लगभग इसकी पुनरावृत्ति की गयी तथा विद्युत ने इसका अनुसरण किया तथापि, 2008-09 के तृतीय तिमाही में विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि में तेज़ी से कमी हो गयी तथा चतुर्थ तिमाही में यह दर शून्य हो गयी। संपूर्ण रूप से औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में वृद्धि 2007-08 में 8.5 प्रतिशत की तुलना में 2008-09 में गिरकर 2.4 प्रतिशत रह गयी।

औद्योगिक उत्पादन में इस कमी के लिए उत्तरदायी बड़े तत्त्वों की संक्षेप में निम्न प्रकार विवेचना की जा सकती है।

i) कच्चे तेल एवं अन्य वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमतें, विशेष रूप से धातुओं एवं कच्चे लोहे ने विनिर्माण क्षेत्र के लागत पक्ष को विपरीत रूप में प्रभावित किया जिसका क्रमशः लाभ-सीमाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

ii) लागत पक्ष में अन्य महत्त्वपूर्ण संघटक ब्याज लागतें भी अपेक्षाकृत अधिक ब्याज दरों के कारण बढ़ गयीं।

iii) हाल ही के वर्षों में भारतीय निगमित क्षेत्र ने अपने विनियोग की वित्त व्यवस्था के लिए बाह्य पूँजी (अर्थात् आंतरिक स्रोतों से भिन्न) प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया। इसके अंतर्गत विदेशी संस्थागत स्रोत सम्मिलित हैं। बाह्य मोर्चे पर 2008-09 में अमेरिकन/वैश्विक जमा रसीदों के माध्यम से संसाधन जुटाने स्रोत लगभग ढह गया तथा ब्राह्य स्रोतों से वाणिज्यिक उधार लेने से आगमन में तेज़ी से कमी आ गयी।

iv) घरेलू स्रोतों में, यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र की गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं द्वारा संसाधन जुटाने की शक्ति के आधार पर गैर-वित्तीय संस्थाओं द्वारा निजी जमा प्राप्ति में वृद्धि हुई। किन्तु इस आधार पर निजी क्षेत्र में संसाधन जुटाने में तेज़ी से कमी हो गयी। वित्त व्यवस्था में तीव्र गति से मंदी के कारण वह औद्योगिक मंदी अधिक तेज़ हो गयी जो पहले से ही पूर्व वर्ष में प्रारंभ हो गयी थी।

v) अर्थव्यवस्था के खुलेपन के साथ भारतीय विनिर्माण की व्यापार उन्मुखता इन वर्षों में बढ़ गयी। सितम्बर, 2008 से प्रारंभ होने वाली निर्यातों की माँग में कमी ने उच्च निर्यात गहनता वाले उद्योगों के कार्य निष्पादन को तेज़ी से प्रभावित किया। निर्यातों में मंदी का प्रभाव वस्त्र, चमड़ा एवं परिवहन संयंत्र जैसे क्षेत्रों में विशेष रूप से स्पष्ट दिखायी पड़ रहे थे।

vi) विनिर्माण क्षेत्र गैर-धात्विक खनिजों, काष्ठ एवं काष्ठ उत्पादों तथा मूल धातुओं को प्रभावित करने वाले भवन-निर्माण एवं जायदाद में कमी के कारण भी प्रभावित हुआ। इन बातों ने घरेलू अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। जो दूसरे दौर के उन प्रभावों के रूप में ज्ञात तथ्यों को अंकित करता है जो राजकोषीय वर्ष 2008-09 के अंत तक निरंतर प्रतीत होती है। अतः विनिर्माण क्षेत्र की माँग में दो-तरफा कमी आ गयी। एक, निर्यातों से उत्पन्न होने वाली माँग में कमी तथा दो, घरेलू माँग में कमी।

vii) उपरोक्त बातों ने विनिर्माण क्षेत्र के लाभों की वृद्धि को प्रभावित किया। कुछ न्यादर्श विनिर्माण कंपनियों के संयुक्त परिणामों में यह दिखायी देता है कि यद्यपि 2007-

08 के तीसरे तिमाही से लाभनीयता दबाव में थी किन्तु 2008-09 के तीसरे तिमाही से इसमें तेजी से कमी आ गयी तथा साथ ही बिक्री में वृद्धि भी तेज़ी से कम हो गयी।

VIII तीव्र गति से पुनर्जीवन

2009-10 के प्रथम दो तिमाहियो ंसे हरियाली (लाभनीयता) दिखायी देना प्रारंभ हो गयी थी। इस अवधि में विनिर्माण उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हुई।

यह NAS आँकड़ों एवं औद्येगिक उत्पादन सूचकांक IIP के आँकड़ें से स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि CSO के अनुमान 2009-2010 में 3.9 प्रतिशत की तुलना में 8.2 प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि बताते हैं किन्तु IIP की अनुमानित वृद्धि दर 7.7 प्रतिशत है जो 2008-09 की अवधि में 0.6 प्रतिशत की अपेक्षा बहुत अधिक है। विशेष रूप से विनिर्माण क्षेत्र में 2009-10 में 8.9 प्रतिशत से वृद्धि हुई है।

बड़े औद्योगिक समूहों में वृद्धि मिश्रित रही है। 2009-2010 में ऑटोमोबाइल, खड़ एवं प्लास्टिक उत्पाद, ऊनी एवं रेशमी वस्त्र, काष्ठ उत्पादक, रसायन एवं मिश्रित विनिर्माण में मजबूत वृद्धि; गैर-धात्विक खनिज उत्पादों में साधारण, कागज़, चमड़ा, खाद्य एवं जूट वस्त्रों में शून्य वृद्धि तथा पेय पदार्थ एवं तम्बाकू उत्पादों में मंदी की स्थिति रही है। उपयोग आधारित वर्गीकरण के अंतर्गत टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं एवं मध्यवर्ती वस्तुओं में मज़बूत वृद्धि (जो आंशिक रूप से आधार प्रभाव से सहायता प्राप्त थी), मूल एवं पूँजीगत वस्तुओं में साधारण वृद्धि तथा गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं में मंदी की स्थिति थी।

वृद्धि में योगदान करने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्व निम्न प्रकार हैं।

i) विनिर्माण कंपनियों की लागत संरचना में सुधार पुनर्जीवन को प्रोत्साहित करता प्रतीत होता है।

ii) पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि, जिसे विनियोग के प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता है, में सुधार हो रहा है किंतु 'पूँजीगत वस्तुओं' के विभिन्न संघटक एक मिश्रित स्थिति प्रदर्शित करते हैं।

iii) पुनर्जीवन की मज़बूती में अनुकूल आधार प्रभाव एवं विनिर्माण की वस्तुओं, विशेष रूप से औद्योगिक आगतों में कम मुद्रा स्फीति ने सहायता की।

इस पुनर्जीवन में (RBI) द्वारा अपनायी गयी सरल मुद्रा नीति एवं सरकार द्वारा दिये जाने वाले राजकोषीय प्रोत्साहनों ने बड़ा योगदान किया।

तथापि, ये सब अपर्याप्त रहे। बाद में वृद्धि दर कम होने लगी। 2011-12 में अपेक्षाकृत कम वृद्धि अंकित की गयी। यह कम वृद्धि 2012-14 में भी नीचे बनी रहने की संभावना है। औद्योगिक वृद्धि के इस चरण के लिए उत्तरदायी बड़े तत्त्वों की पहचान निम्न प्रकार की जा सकती है।

i) यूरो क्षेत्र में वित्तीय संकट ने इस क्षेत्र में भारत के निर्यातों की माँग को सुखा दिया।

ii) यू.एस. में पुनर्जीवन की गति मंद थी, यह माँग का सृजन करने में असफल रही। अतः इस क्षेत्र के निर्यातों में भी मंदी हो गयी।

iii) अपनायी गयी समष्टि आर्थिक नीतियों ने (क) बढ़ता हुआ राजकोषीय घाटा उत्पन्न किया, (ख) चालू खाते में घाटे का विस्तार किया, तथा (ग) मुद्रास्फीति की दर को अधिक कर दिया।

ये समष्टि आर्थिक नीतियों के संशोधन में महत्त्वपूर्ण तत्त्व बन गये। मुद्रास्फीति पर नियंत्रण ने अपेक्षाकृत अधिक प्राथमिकता ग्रहण कर ली। इन सब कारणों से औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि दर मंदी हो गयी।

9.4.2 पुनर्जीवन की संभावनाएँ

अनेक ऐसे सकारात्मक तत्त्व हैं जो मध्यम काल में भारत के औद्योगिक परिदृश्य को स्वयं भारत एवं अधिकांश अन्य देशों दोनों के संबंध में उज्जवल बना देते हैं।

i) वैश्विक मोर्चे पर कुछ व्यापार में भागीदारों की यह प्रवृत्ति है कि वे भारतीय बाजार में संभवतः राशिपातन के नामक कार्यों में सम्मिलित हैं। जान-बूझकर लागत लाभों को बनाने एवं उन्हें बनाये रखने के लिए उद्योग के संभव वैश्विक पुनर्संरचना की स्थिति दी होने पर भारतीय उद्योग के हितों का संरक्षण करते समय लागत लाभों को प्राप्त करने की आवश्यकता में संतुलन द्वारा प्रत्युत्तर का अंशाकन करना होगा।

ii) भारतीय बाजार के आकार एवं औद्योगिक उत्पादों की पूरी न की गयी माँग उचित आशा प्रदान करते है कि माँग स्वयं एक सीमितता के तत्त्व के रूप में नहीं होगी। एक निरंतर बढ़ती हुई सोच है कि पिरामिड के निम्नतम स्तर तक पहुँचने के लिए उद्योग को सचेतन प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने में समर्थ होने के लिए उद्योग को उन उत्पादों को प्रदान करने की आवश्यकता होगी जो लागत-प्रभावी तरीके से मुद्रा का मूल्य प्रदान करते हैं।

iii) वैज्ञानिक मानवीय शक्ति एवं अनुसंधान प्रयोगशालाओं के विशाल भंडार नवप्रवर्तन की संभावनाएँ प्रदान करते है जो ऐसे उत्पादों का सृजन कर सकते हैं जो बाजार क्षेत्रों को खोल सकते हैं। तथापि, नवप्रवर्तन को वृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण संचालक होने के लिए उद्योग तथा अनुसंधार भ्रातृत्व में एक समयबद्ध एवं परिणामोन्मुख तरीके से सक्रिय सहयोग करने की आवश्यकता है।

iv) मजबूत साहसिक योग्यताओं सहित भारतीय औद्योगिक निगमित क्षेत्र की अपनी शक्ति एक उम्मीद प्रदान करती है कि वे वर्तमान परिवर्तनों के साथ समायोजन द्वारा अपनी प्रावैगिकता का निरंतर प्रदर्शन करते रहेंगे। इस प्रावैगिकता को एक अच्छे निगमित सुशासन के साथ मिलाने की आवश्यकता होती है जो व्यवसाय तथा उद्योग में नीतिशास्त्र के सर्वोत्तम मानदंडों का पालन करता है।

v) 12वीं पंचवर्षीय योजना एवं उसके बाद आधारभूत ढाँचे के लिए निर्मित विशाल विनियोग योजनाओं से यह उम्मीद की जाती है कि वे उद्योग में बाधक आधारभूत ढाँचे से संबंधित सीमितताओं का निराकरण कर देंगी। चुनौती यह सुनिश्चित करने की है कि आधारभूत ढाँचे से संबंधित इस प्रकार की परियोजनाएँ शीघ्रतापूर्वक फले-फूलें। क्योंकि आधारभूत ढाँचे में वृद्धि केवल पूर्ति पक्ष की सीमितता को ही कम नहीं करती बल्कि औद्योगिक उत्पादन के लिए आवश्यक अतिरिक्त घरेलू माँग को भी प्रोत्साहित करती है।

vi) FDI का निरंतर आगमन उस सकारात्मक विचार को सुदृढ़ बना देता है कि भारतीय बाजार में विनियोग की खपत करने एवं उत्पादक वृद्धि पर आधारित प्रतिफल का सृजन करने की क्षमता है। इसके साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था की मध्यमकालीन प्राथमिकताओं एवं दीर्घकालीन चिंताओं के बीच संतुलन करने की आवश्यकता होती है। दीर्घकालीन चिंताओं के अंतर्गत पर्यावरण एवं सुरक्षा से संबंधित चिंताएँ सम्मिलित होती हैं।

इस बात के सकारात्मक संकेत हैं कि भारतीय उद्योग धक्के के सबसे गंभीर भाग का सामना करने में खरा उतरा है तथा अब पुनः तीव्र गति के पथ पर है।

इस मोड़ पर जबकि अधिकांश औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में औद्योगिक उत्पाद की संभावनाएँ धुँधली प्रतीत होती हैं, कीमतों, उत्पादन एवं बाजार को आकार की आकृति भारतीय उद्योग को विनियोग के लिए कुछ चुनिन्दा आकर्षक गंतव्य स्थानों में से एक बना देता है।

अब अनेक तत्त्वों का संयोग तेज़ी की मजबूती, गति एवं समय निर्धारित करेगी –

i) मौद्रिक नीति का सरलीकरण तेज़ी की गति अधिक कर सकता है। बहुत कुछ साख की माँग में होने वाली वृद्धि पर निर्भर करेगा।

ii) राजकोषीय पक्ष पर, भवन निर्माण पर व्यय एवं आधारभूत ढाँचे में विनियोग तेज़ी में सुविधाजनक हो सकता है। ग्रामीण आय में सुधार के कारण उपभोक्ता व्यय पर प्रत्याशित प्रभाव के साथ सम्मिलित करने पर यह आर्थिक पुनर्जीवन की मज़बूती एवं समय को निर्धारित करेगा।

iii) यू.एस. के पुनर्जीवन से उत्पन्न वैश्विक औद्योगिक पुनर्जीवन से निर्यात वृद्धि में तेज़ी आनी चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1) उन तत्त्वों की संक्षेप में विवेचना कीजिए, जो एक अर्थव्यवस्था में औद्योगीकरण की गति को निर्धारित करते हैं।

.....

.....

.....

2) 1956 से भारत में उद्योग की वृद्धि के चरणों का संक्षेप में पता लगाइए।

.....

.....

.....

3) भारत में औद्योगिक वृद्धि की संभावनाओं पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

9.5 औद्योगीकरण का ढाँचा

औद्योगिक वृद्धि का द्वितीय महत्त्वपूर्ण पहलू उस औद्योगीकरण के ढाँचे से संबंधित है जिसका स्वतंत्रता से अनुसरण किया गया है। औद्योगीकरण के ढाँचे का अध्ययन दो शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है : (क) उद्योगों का कार्यात्मक ढाँचा, (ख) उद्योगों का स्वामित्व ढाँचा।

9.5.1 उद्योगों का कार्यात्मक ढाँचा

उपयोग आधारित या कार्यात्मक वर्गीकरण के मापदंड से विभिन्न उद्योगों को चार समूहों में विभाजित किया जा सकता है : (i) मूल उद्योग, (ii) पूँजीगत वस्तुओं के उद्योग, (iii) मध्यवर्ती वस्तुओं के उद्योग, तथा (iv) उपभोक्ता वस्तु उद्योग।

विभिन्न उद्योगों में वृद्धि की चक्रवृद्धि दरों से संबंधित पाँच स्पष्ट चरणों में उनका अवलोकन किया जा सकता है।

क) **प्रथम चरण : 1960 के दशक के मध्य तक**

सामान्य रूप से प्रथम चरण में उद्योगों की वृद्धि दर में तेज़ी से वृद्धि हुई। इस दिशा में बड़ा योगदान मूल एवं पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों द्वारा किया गया।

इस अवधि में औद्योगीकरण का जो ढाँचा निकल कर आया उसमें दो लक्षण थे :

i) मूल एवं पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों की तीव्र वृद्धि,

ii) उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की धीमी गति से वृद्धि।

यह ढाँचा द्वितीय योजना की अवधि में निर्मित वृद्धि की रणनीति के अनुरूप था तथा बाद की योजना में भी इसका अनुसरण किया गया था।

ख) **द्वितीय चरण : 1965-75 तक**

1960 के दशक के मध्य से अगले चरण में, जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, औद्योगिक वृद्धि की दर कम होने लगी। मूल एवं पूँजीगत वस्तुओं के उद्योग की वृद्धि दर पूर्व की अपेक्षा कम थी तथा यह औद्योगिक वृद्धि में न्यून औसत वृद्धि की अपेक्षा भी कम थी। जहाँ वृद्धि थोड़ी अधिक थी, उनमें से अधिकांश उद्योग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से टिकाऊ उपभोग वस्तुओं जैसी 'विशिष्ट वर्ग उन्मुख उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र' से संबंधित थी जिन्हें संभवतः ठीक ही 'भारतीय औद्योगीकरण की उपेक्षिता' के रूप में विवेचन किया गया है।

ग) **तृतीय चरण : 1975-90**

इस अवधि में औद्योगिक वृद्धि समुचित रूप से विविधीकृत थी। सभी विभिन्न वर्गों में वृद्धि दरों में वृद्धि हुई। मूल वस्तु उद्योगों ने संगत रूप से पर्याप्त अधिक वृद्धि दर को बनाये रखा तथा इसी प्रकार पूँजीगत वस्तु एवं मध्यवर्ती वस्तुओं के कार्य निष्पादन से हुआ।

घ) **चतुर्थ चरण : 1990 का दशक एवं उसके बाद**

1990 के दशक में यद्यपि मूल एवं पूँजीगत वस्तु क्षेत्र का योगदान कम हो गया, किन्तु

मध्यवर्ती एवं उपभोक्ता वस्तुओं में तीव्र गति से वृद्धि हुई। 1990 के दशक में कुल औद्योगिक उत्पादन में मूल एवं पूँजीगत वस्तु क्षेत्रों के सापेक्षिक रूप से कम योगदान अन्य बातों के अतिरिक्त आयात उदारीकरण को प्रतिबिंबित करता है जिसने निगमित क्षेत्र को 'अन्य आय' के माध्यम से वित्तीय लाभ प्राप्त करने में समर्थ बनाया। साथ ही यह प्रतिस्पर्धाशक्ति की कमी को भी प्रतिबिंबित करता है। इसके लिए अनेक उद्योगों में औद्योगिक पुनर्संरचना करने तथा तकनीकों के आधुनिकीकरण की आवश्यकता होती है। इस आखिरी तत्त्व के संबंध में दिये हुए नीतिगत वातावरण के अंतर्गत स्वयं उद्योग द्वारा निर्णय लिये जाने की आवश्यकता है जो वातावरण विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने एवं आर्थिक वृद्धि में वित्तीय एवं वास्तविक क्षेत्रों द्वारा अपनी समुचित भूमिका निभाने की भावना से ओत-प्रोत है।

टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के अंश में भी दृश्य वृद्धि हुई है (दुकानों की अलमारियों में नये ब्राँड की तेज़ी से एवं आक्रामक गति से भरमार हुई है)।

ङ) **पंचम चरण : 2008-09 एवं आगे का मंदी का चरण**

2007-08 के द्वितीय तिमाही में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं से मंदी प्रारंभ हो गयी। किन्तु मध्यवर्ती एवं गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं को भी सम्मिलित करते हुए अन्य उपयोग आधारित श्रेणियों द्वारा कुल वृद्धि पर्याप्त भली प्रकार समर्थित थी। यद्यपि, यह वृद्धि अपेक्षाकृत कम स्तर पर थी। पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि निरंतर मज़बूत गति से बनी रही। संभवतः यह उच्च विनियोग दरों को प्रदर्शित करती है। तथापि, 2008-09 की प्रथम तिमाही से मध्यवर्ती वस्तुओं की वृद्धि में कमी से संपूर्ण वृद्धि में तेज़ी से कमी हो गयी जिसमें 2008-09 की तीसरी तिमाही में अधिक तीव्रता आ गयी। बाकी समूहों ने भी वृद्धि में तेज़ी से कमी प्रदर्शित की।

2008-09 की अंतिम तिमाही से औद्योगिक अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र पुनर्जीवन की स्थिति में प्रवेश कर गये थे। उच्चावचन कम होने के साथ औद्योगिक पुनर्जीवन का आधार विस्तृत हो गया। उद्योग के अंदर सबसे तेज़ वृद्धि करने वाले क्षेत्र पूँजीगत वस्तु एवं टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के हैं। 2009-10 की अवधि में पूँजीगत वस्तु क्षेत्र 17.1 प्रतिशत की मज़बूत औसत वृद्धि से बढ़ा। बाद में 2010-11 की अवधि में पूँजीगत वस्तुओं में वृद्धि धीरे-धीरे अधिक वृद्धि के मार्ग पर चल रही है जो अपेक्षाकृत कम संवेदनशील है।

2009-10 की अवधि में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र में वृद्धि 25.8 प्रतिशत से हुई विस्तारवादी मौद्रिक नीति के अंतर्गत कम ब्याज़ दरों एवं वेतन में वृद्धि तथा छठें वेतन आयोग की सिफारिशों के क्रियान्वयन के बाद बकाया धनराशि के भुगतान से टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में तीव्र गति से वृद्धि हुई।

तथापि, गैर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ निरनतर कार्य-निष्पादन में पीछे बनी रहीं। इस क्षेत्र ने वृद्धि ढाँचे में तीव्र संवेदनशीलता प्रदर्शित की है।

अन्य उपयोग आधारित श्रेणियों में मूल वस्तु एवं मध्यवर्ती वस्तुओं ने भी 2009-2010 की अवधि में अपेक्षाकृत अधिक एवं अधिक संगत वृद्धि अंकित की है।

संक्षेप में, वर्तमान में कुल उद्योगों के उत्पादन में मूल उद्योगों का भाग 21 प्रतिशत, उपभोक्ता वस्तुओं का 19 प्रतिशत मध्यवर्ती उत्पादों का 53 प्रतिशत तथा पूँजीगत वस्तुओं का भाग 7 प्रतिशत है।

9.5.2 उद्योगों का स्वामित्व ढाँचा

मूल तथा पूँजीगत उद्योगों पर अत्यधिक विश्वास करने वाले औद्योगिक रणनीति के निर्माताओं द्वारा यह अनुभव किया गया कि इसकी सफलता के लिए स्वयं राज्य को साहसिक कार्य को सहन करना पड़ेगा। इसके पक्ष में तर्क की व्याख्या निम्न तत्त्वों द्वारा की गयी थी।

- प्रथम योजना के ठीक बाद एवं उसके पश्चात् की अवधि में भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का बहुत तेज़ी से विस्तार हुआ। यह इतना अधिक हुआ कि इसका भाग अर्थव्यवस्था में विशुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण का लगभग दो-तिहाई हो गया। तथापि, सार्वजनिक क्षेत्र में तृतीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में विशुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण में मंदी आने लगी। तब से यह सामान्यतः 45 प्रतिशत से 48 प्रतिशत के बीच परिवर्तित होता रहा।

- ये प्रवृत्तियाँ उस स्वामित्व एवं संगठन में प्रतिबिंबित होती हैं जो वर्षों में उभर कर आयी है। इस प्रकार व्यावहारिक रूप से एक साफ स्लेट से प्रारंभ होकर सार्वजनिक क्षेत्र (केंद्रीय + राज्य + स्थानीय) का अंश 1990 के दशक के लगभग मध्य में बढ़कर कुल कारखानों की संख्या का 4.7 प्रतिशत, रोजगार में 27.4 प्रतिशत, उत्पादक पूँजी में 55 प्रतिशत, वेतन की धनराशि में 34.3 प्रतिशत, उत्पादन के मूल्य में 25.5 प्रतिशत तथा मूल्यवर्धन में 30.1 प्रतिशत हो गया। तथापि, यह अवलोकन किया जा सकता है कि इसका उत्पादन, मूल्यवर्धन एवं रोज़गार में अंश बहुत कम है।

9.6 लक्षण एवं कमियाँ

भारत में औद्योगिक विकास प्रक्रिया के कुछ विशिष्ट किन्तु बाधा उत्पन्न करने वाले लक्षणों तथा उनसे संबंधित समस्याओं की पहचान निम्न प्रकार की जा सकती है।

1) **देश की ऋणग्रस्तता में योगदान** : चूँकि पूँजीगत वस्तु उद्योगों की आयात सघनता सामान्यतः अधिक होती है अतः इन आवश्यकताओं को विदेशी सहायता से पूरा करना पड़ा। इसी प्रकार, पिछले दो दशकों की अवधि में विलासिता उपभोग प्रेरित वृद्धि आयात-प्रधान औद्योगीकरण की पर्याय बन गयी थी। अतः यह औद्योगीकरण का प्रयास प्रभावशाली होने के बावजूद भी वित्तीय दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर होने से बहुत दूर था।

2) **तकनीकी निर्भरता में वृद्धि** : बाह्य वित्तीय सहायता के साथ इस प्रयास की अवधि में तकनीकी निर्भरता में भी वृद्धि हुई तथा इसके साथ बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका में भी वृद्धि हो गयी।

3) **बेरोज़गारी या श्रमशक्ति के क्षेत्रवार वितरण पर नगण्य प्रभाव** : औद्योगीकरण की रोज़गार सृजन करने वाली क्षमता समय के साथ स्वाभविक वृद्धि वाली संचित शहरी बेरोज़गारी को कम करने या ग्रामीण क्षेत्रों आने वाले लोगों के रोज़गार देने में पर्याप्त नहीं थी।

4) **कृषीय वृद्धि का प्रभाव** : यद्यपि वर्षों से कृषि आधारित उद्योगों का अंश कम हो गया है किन्तु कृषीय वृद्धि का औद्योगिक वृद्धि पर प्रभाव कमजोर नहीं हुआ

है। यह तथ्य इस बात से सामने आया है कि कृषीय उत्पादन में उच्चावचन औद्योगिक उत्पादन में उच्चावचन से पूर्व होते हैं।

5) **वास्तविक मज़दूरी पर कोई प्रभाव नहीं** : यह कहने की बात नहीं है कि बदलती हुई औद्योगिक संरचना के साथ निरंतर कुशल रोज़गार सृजन के अधिक अवसर नहीं खुले हैं या उपयुक्त नहीं हुए हैं किन्तु स्थैतिकता की तस्वीर श्रमिकों की किसी विशिष्ट श्रेणी या विशेष रूप से अकुशल श्रमिकों के लिए मोटे तौर पर मान्य बनी रहती है।

6) **औद्योगीकरण की पर्यावरण संबंधी लागतें मस्तिष्क को चौंकाने वाली हैं:** प्रदूषकों की विशाल मात्राएँ– सुदृढ़, तरल एवं गैसयुक्त, जो वायु जल तथा भूमि प्रणाली में छोड़े जा रहे हैं वे मनुष्य एवं प्रकृति के बीच संबंधों में नई जटिलताएँ भर रहे हैं। पर्यावरण संबंधी परिवेश से संबंधित कुछ आँकड़े बिल्कुल चौंकाने वाले हैं। वर्तमान में भारत में उपलब्ध लगभग 70 प्रतिशत जल प्रदूषित है। जल से संबंधित बीमारियों के कारण 73 मिलियन से अधिक दिनों का प्रतिवर्ष नुकसान होता है। प्रति सेकंड लगभग आधा हेक्टेयर जंगल लकड़ी के लिए उपयोग हो जाता है। पर्यावरण प्रणाली में निहित जीवनरक्षक प्रणाली पर दबाव शून्य प्रतिफल के बिंदु तक हो गया है।

7) **तुलनात्मक लाभ की उपेक्षा** : औद्योगिक वृद्धि की मुख्य कमी यह रही है कि भारत उन उद्योगों से दूर हट गया है जिनमें वास्तविक तुलनात्मक लाभ होते हैं तथा अन्य उद्योगों में भारी विनियोग किया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस प्रकार के परिवर्तन का मुख्य कारण नियोजन की उस रणनीति में निहित है जिसका अब तक अनुसरण किया गया था तथा जिसने अर्थव्यवस्था को बंद अर्थव्यवस्था के रूप में माना।

8) **पारिवारिक व्यवसाय की वृद्धि** : अंतिम परिणाम असंबंधित विविधीकरणों में परिसंपत्तियों के अनियमित वृद्धि के रूप में था। औद्योगिक घरों को कभी भी वास्तव में प्रतिस्पर्धी दशाओं के अंतर्गत उचित प्रतिफल अर्जित करने के परीक्षण में सफल नहीं होना पड़ा। इसके अतिरिक्त अनेक कंपनियों ने अपने सममूल्य अंश स्वामित्व में कमी को रोकने के लिए ऊँची लागतों एवं विकृत वित्त व्यवस्था के समाधान को अपनाया। बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा, तकनीकी प्रचीनता तथा छोटे होते उत्पाद जीवन चक्र के होने से स्वतः विकसित हो रही अकुशलताएँ अत्यधिक कठिन सिद्ध हो रही है।

9) **आधारभूत अनुसंधान की उपेक्षा** : कुछ औद्योगिक समूह क्रमबद्ध अनुसंधान करने के प्रावधान में रुचि दिखाते प्रतीत होते हैं। उद्योग अपने देश में विकसित करने के बजाय विदेशी तकनीक एवं विदेशी मशीनों पर निरंतर निर्भर रहे हैं। स्पष्ट रूप से बड़े निगमों ने बौद्धिक संपत्ति अधिकार में परिवर्तनों के प्रभावों की पूर्ण रूप से उपेक्षा की है। वे अब तकनीकी आत्मनिर्भरता को आवश्यक बना देते हैं क्योंकि अब विकसित देश से तकनीक का उधार लेना आर्थिक नहीं होगा। नवप्रवर्तन के लाभों को बाँटने से संबंधित कुछ अनिश्चित नीतिगत वातावरण ने कंपनियों को निरुत्साहित किया।

10) **क्षेत्रीय असंतुलन** : केंद्रीय क्षेत्र की परियोजनाओं में बड़े पैमाने पर विनियोग इस उम्मीद पर आधारित था कि इसका लघु एवं सहायक उद्योगों को प्रोत्साहित

करने पर्याप्त विस्तृत 'लहर प्रभाव' (ripple effect) होगा। किन्तु यह बिहार, उड़ीसा एवं मध्यप्रदेश जैसे कई राज्यों में सफल नहीं हुआ। साहसियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति वहाँ जाना होता है जहाँ आधारभूत ढाँचा मज़बूत होता है, बाजार नज़दीक होते हैं तथा विभिन्न सेवाएँ तुरंत उपलब्ध होती हैं। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है।

11) **उत्पादन की ऊँची लागत** : औद्योगिक परिवेश की अन्य कमजोरी अंतर्राष्ट्रीय कीमतों की तुलना में इसके कुछ उत्पादों की ऊँची लागतें हैं।

यह भारत की वृद्धि की प्रतिस्पर्धा शक्ति को विपरीत रूप में प्रभावित करती है। विश्व आर्थिक मंच के वैश्विक प्रतिस्पर्धा शक्ति रिपोर्ट 2008 में 134 देशों के समूह में भारत 50वें कोटिक्रम पर स्थित है। इसी प्रकार, अन्य मानदंडों पर भी भारत का कोटिक्रम न्यून है जैसे समष्टि आर्थिक वातावरण (109) सरकारी बर्बादी (127), भ्रष्टाचार (80), तकनीक (63) कंपनी संचालन की जटिलता (3) राष्ट्रीय व्यवसाय वातावरण की गुणवत्ता (31) इत्यादि।

12) **औद्योगिक क्षमता का अल्प उपयोग** : कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों में उपयोग दरें मात्र 25 से 50 प्रतिशत ही बतायी जाती हैं। अल्प उपयोग वृद्धि की प्रक्रिया में गंभीर समस्याएँ उत्पन्न करता है। क्षमता के अनुकूलतम उपयोग के लिए उपयुक्त दशाओं का सृजन सहित सभी प्रकार के प्रयास किये जाने चाहिए।

13) **सकारात्मक कार्यवाही के माध्यम से सामाजिक विकास में योगदान नगण्य है** : निःसंदेह, इस दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये हैं किन्तु भारत के आकार, निर्धनता एवं वंचन के स्तर को देखते हुए उद्योग का योगदान महासागर में एक बूँद मात्र है। अर्थात् बहुत ही कम है। भारतीय साहसी बुद्धिमान हैं तथा विश्वास एवं योग्यता के आधार पर वैश्वीकरण के लाभों से ऊपर उठे हैं किंतु उनमें अब तक सरकार, NGO तथा जनता द्वारा विश्वास नहीं किया गया है और न उनकी देखभाल हुई है।

9.7 तीव्र औद्योगिक वृद्धि के सुझाव

वर्तमान आर्थिक सुधारों का उद्देश्य विदेशी प्रतिस्पर्धा के प्रोत्साहन को सम्मिलित करते हुए भारतीय उद्योग को अपेक्षाकृत अधिक प्रतिस्पर्धी बनाना है। इसका आवश्यक रूप से अभिप्राय यह होता है कि उद्योग को बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा का सामना करने में अवश्य सक्षम होना चाहिए जो तीन स्रोतों से उत्पन्न होता है :

क) अपेक्षाकृत कम तटकरों पर घरेलू बाजार में स्वतंत्रतापूर्वक आने वाली आयातित वस्तुएँ;

ख) अपने ट्रेड मार्क एवं तकनीक का उपयोग करने वाले विदेश नियंत्रित उपक्रमों द्वारा घरेलू बाजार के लिए देशों में वस्तुओं का उत्पादन करना;

ग) लाइसेंस व्यवस्था एवं अन्य नियंत्रणों एवं नियमनों से मुक्त घरेलू उपक्रमों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन करना।

विभिन्न चुनौतियों को देखते हुए उद्योग के निर्यातों के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर को प्राप्त करना चाहिए। इनमें से दो महत्त्वपूर्ण निम्न प्रकार हैं :

i) अन्य विकासशील देशों, विशेष रूप से पूर्वी एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा कुछ लैटिन अमेरिका के देशों से प्रतिस्पर्धा, जिन्होंने भारत की अपेक्षा बहुत पहले से बाह्योन्मुखी रुख अपना लिया है तथा पहले से ही अपनी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा शक्ति में वृद्धि कर ली है; और

ii) पर्यावरण, स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं तकनीकी मानदंडों के नाम पर औद्योगिक देशों में गैर-तटकर अवरोध।

उद्योग को अवश्य ही इसका सामना करना चाहिए जैसा कि जल सेना में कहा जाता है 'जहाज पर सवारी के लिए तब जाएँ जब वह दौड़ रहा हो'।

तीव्र औद्योगिक वृद्धि पुनर्संरचना एवं पूर्ण रूप से मरम्मत द्वारा ही संभव होती है। नीतियों द्वारा आधुनिकीकरण, तकनीक को उन्नत करने एवं उत्पादन में पैमाने की मितव्ययिताएँ प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होती है। निम्न दृष्टिकोणों के आधार पर कार्यवाही का सुझाव दिया जा सकता है।

1) **उत्पादन के पैमाने** : उभरते हुए उदार वातावरण में पैमाने की मितव्ययिताओं एवं आकार के साथ वित्तीय शक्ति जीवित रहने तथा विस्तार के लिए अत्यावश्यक होगी। बाहर से प्रतिस्पर्धा का सामना करने तथा उत्पादन के पैमाने में वृद्धि करने के लिए भी विलयन या एकीकरण को अपनाना आवश्यक हो सकता है। विलयन या अधिग्रहण का एक बड़ा लाभ पूँजीकरण में तेज़ी लाना होता है। यह क्रमशः स्थानीय कंपनियों को मज़बूत प्रतिस्पर्धा का दृढ़ता से सामना करने के लिए क्षमता का निर्माण करने में सहायता करेगी।

2) **व्यवसाय की रणनीतियों में परिवर्तन** : अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन से व्यवसाय को बाजारों का विस्तार करने अधिक ग्राहकों को अपने साथ जोड़ने तथा लागतों को कम करने की आवश्यकता होती है। इन सब के लिए व्यवसाय की रणनीतियों में परिवर्तन की आवश्यकता होगी। इनमें से एक प्रतिस्पर्धा से हटकर सम्मिलित प्रतिस्पर्धा हो सकती है। 'सम्मिलित प्रतिस्पर्धा' के अंतर्गत निम्न बातें निहित हैं–

   i) वर्तमान बाजारों का विस्तार करने तथा नये बाजार का निर्माण करने में प्रतिस्पर्धियों के साथ सहयोग करना;

   ii) ग्राहकों को अधिक मूल्य प्रदान करने के उद्देश्य से पूरक वस्तुओं के उत्पादकों के साथ दोस्ती करना;

   iii) पूर्तिकर्ताओं को अपनी विकास लागतों का प्रसारण करने में समर्थ बनाने के लिए प्रतिस्पर्धियों के साथ सम्मिलित रूप से कार्य करना;

   iv) पूर्तिकर्ताओं से अपेक्षाकृत कम कीमतों पर माल प्राप्त करने के लिए पूरक वस्तुओं के उत्पादकों के साथ सहयोग करना।

3) **वास्तविक प्रक्षेपण** : बदलते हुए नये वातावरण में यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि भविष्य के लिए प्रक्षेपण बनाने के उत्तरदायी सरकारी एजेंसियाँ अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण होनी चाहिएं। यह विशेष रूप से हर प्रकार के आधारभूत ढाँचे की माँग प्रक्षेपणों के संबंध में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। आधारभूत ढाँचे की विशाल माँग के प्रक्षेपणों के बावजूद निजी निवेशक विश्वस्त प्रतीत नहीं होते हैं।

4) **व्यवहार्य तकनीक नीति** : एक व्यवहार्य तकनीक नीति के लिए नीतिगत नुस्खों में निम्न बातें सम्मिलित हैं :

   i) अपने प्रतिष्ठान में ही अनुसंधान एवं विकास (R & D), विशेष रूप से मूल अनुसंधान पर व्यय;

   ii) औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं अनुसंधान संगठनों के बीच घनिष्ठ संबंध;

   iii) एक निश्चित तकनीक उत्पादकों एवं प्राप्तकर्ताओं के बीच समय-समय पर वार्तालाप;

   iv) सूक्ष्म इलेक्ट्रॉनिकी, स्पेस तकनीक, सेटेलाइट तकनीक, सूक्ष्म रसायन एवं जैविकीय तकनीक जैसे सर्वश्रेष्ठ तकनीकों पर संकेंद्रण;

   v) पहले से प्राप्त तकनीकी उन्नति का व्यावहारिक प्रयोग;

   vi) प्रबंधन, पुनः नवीन किये जाने योग्य स्रोत, उर्वरक, जल प्रबंधन, खनिज विकास, संचार इत्यादि जैसे क्षेत्रों में तकनीक में निरंतर उन्नति के लिए वातावरण का सृजन करना।

5) **गुणवत्ता** : उद्योग को गुणवत्ता के महत्त्व पर गंभीरता से विचार करना चाहिए तथा यह ध्यान रखना चाहिए कि वे 'क्रेताओं के बाजार' में कार्य कर रहे हैं। आज शेयर बाजारों एवं पेटेंट शासन प्रणाली की समस्याओं के विषय में सभी प्रकार की बातचीत के बावजूद तकनीक अपेक्षाकृत अधिक गतिशील हैं। हमें जो करने की आवश्यकता है वह यह है कि हमारे उद्योगों को अवसरों का शोषण करने के लिए पूर्ण रूप से समर्थ होना चाहिए। इस प्रकार हम अपनी सीमाओं पर विजय प्राप्त कर सकेंगे तथा प्रतिस्पर्धी कीमतों पर गुणवत्तायुक्त उत्पादों का उत्पादन करने में अत्यधिक उन्नति प्राप्त कर सकते हैं।

6) **उत्पादन की लागत** : ऊँची पूँजी लागत, अप्रत्यक्ष करों का अत्यधिक भार एवं न्यून उत्पादकता के परिणामस्वरूप पूँजी उत्पाद अनुपात अधिक होता है। आधारभूत ढाँचे की अपर्याप्तता एवं उनकी ऊँची लागतें अन्य तत्त्व हैं जो लागतों में वृद्धि करते हैं। इन दृष्टिकोणों से कार्यवाही प्रारंभ करने की आवश्यकता है।

7) **साहसिक विकास** : योग्य एवं अत्यधिक प्रेरणा युक्त साहसियों/प्रबंधकों को विकसित करना आवश्यक होता है। 'समन्वित साहसी विकास कार्यक्रम' को शक्तिशाली बनाने की नितांत आवश्यकता है।

8) **क्षेत्रीय आर्थिक खंड** : विकास के संयुक्त प्रयास के उद्देश्य से क्षेत्रीय आर्थिक खंडों के निर्माण को प्रोत्साहन देना चाहिए। एक सम्मिलित कर नीति का निर्माण करने, सम्मिलित आधारभूत ढाँचा विकसित करने तथा अंतर्राज्यीय रुकावटों को हटाने के लिए राज्यों को एक क्षेत्र का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए।

9) **साधन उपयोग में लचीलापन** : औद्योगिक एवं निर्यात वृद्धि के अपेक्षाकृत अधिक स्तर प्राप्त करने के लिए भारतीय फर्मों द्वारा साधन उपयोग में लचीलेपन की आवश्यकता है। इसका एक पहलू कुशल साहसियों, प्रबंधकों एवं निगमित व्यवस्थापकों के प्रवेश के लिए एक अधिक सक्रिय बाजार से होता है।

अन्य लचीलेपन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा मान्यता प्राप्त साधनों – पूँजी, भूमि एवं श्रम के उपयोग से संबंधित हैं। जुलाई 1991 से सरकारी नीतियों में पूँजी के चुनाव एवं उपयोग में अत्यधिक लोच को सम्मिलित किया गया है। किंतु अन्य दो से संबंधित नीतियों में बहुत कुछ वांछित है। एक गतिशील भूमि बाजार की रुकावट के रूप में 1976 का शहरी भूमि (सीमा एवं नियमन) अधिनियम (ULCRA)[1] विद्यमान है। इसी प्रकार, किसी श्रमिक की छँटनी करने से पूर्व प्रबंध व्यवस्था को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के उपभाग 25 (N) एवं 25(O) के अंतर्गत सरकार से अनुमति लेनी होती है। यह अनुमति शायद ही कभी दी जाती है। इन दोनों ही अधिनियमों की उचित प्रकार से पुनः संरचना करने की आवश्यकता है।

10) **औद्योगिक संबंध** : भारत का श्रम अधिनियम अति संरक्षणात्मक है तथा प्रबंध तंत्र को प्रबंध करने का कोई अधिकार नहीं है। इसने श्रम की उत्पादकता एवं उत्पादों की गुणवत्ता में बाधा पहुँचायी है तथा भारतीय उत्पादों को कम मज़दूरियों के बावजूद मँहगा बना दिया है। लागतों को न्यूनतम करने के लिए प्रबंध तंत्र के पास अपने मानवीय संसाधनों को पुनर्संगठित करने के लिए पूर्ण अधिकार होना चाहिए। मज़दूरी भुगतान की वर्तमान प्रणाली उत्पादकता को हतोत्साहित करती हौ जिन अधिकांश देशों में उत्पादकता अधिक है, वहाँ मज़दूरी उत्पादकता से जुड़ी हुई होती है। जिन देशों में मज़दूरियाँ जीवन निर्वाह से जुड़ी है, वहाँ सामान्यतः उत्पादकता में हानि हुई है तथा उद्योग ने अपनी प्रतिस्पर्धा शक्ति को खो दिया।

11) **घरेलू बाजार के लिए उत्पादन** : उत्पादकों को अपने अस्तित्त्व के लिए केवल विश्व के बाजारों को ही देखने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय घरेलू बाजार, विशेष रूप से निम्न स्तर पर, अत्यधिक विशाल हैं तथा यह कीमत एवं कार्य करने के तरीके प्रति संवेदनशील हैं। हमें उन कंपनियों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है जो इस बाजार पर ध्यान केंद्रित करती हैं। हमें अब शानदार सूचना तकनीक (IT) एवं उच्च तकनीक क्षेत्रों से आगे सोचने की आवश्यकता है तथा समाज के गैर-विशिष्ट वर्ग की आवश्यकताओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है तथा विनिर्माण का उपयोग उन्हें रोज़गार, वस्तुएँ एवं सेवाएँ प्रदान करने के साधन के रूप में करना चाहिए।

12) **प्रबंध तंत्र एवं नियंत्रण** :

i) वित्त व्यवस्था के एक बड़े स्रोत के रूप में उभरता हुआ पूँजी बाजार, पारस्परिक निधि की बढ़ती हुई भूमिका एवं विदेशी वित्तीय संस्थाओं की विस्तृत होती भूमिका के साथ जो भारतीय कंपनियाँ वृद्धि करना चाहती हैं उनके लिए महत्त्वपूर्ण संस्थागत अंशधारिता अपरिहार्य हो सकती है। अतः संस्थागत अंशधारिता कम करने के प्रयास के बजाय यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि जब तक प्रबंध तंत्र का कार्य संपादन सुदृढ़ नहीं हो जाता तब तक उसका समर्थन करने की स्वस्थ परम्परा बनी रहती है।

[1] केंद्रीय सरकार ने पहले से ही ULCRA समाप्त कर दिया है। तथापि, केवल कुछ राज्यों ने अपनी शहरी भूमि सीमा अधिनियम को समाप्त किया है। यदि बाकी राज्य भी अन्य के राज्यों के उदाहरण का अनुसरण नहीं करते तथा वर्तमान शहरी भूमि सीमा अधिनियम को समाप्त नहीं करते तो पूर्ण पैमाने पर औद्योगिक पुनर्संरचना नहीं होगी।

ii) परिवार स्वामियों से संबंधित अन्य मानसिक अवरोध के समाधान की आवश्यकता होती है। उन्हें अन्य भारतीय कंपनियों के साथ पुनः होने के लिए तैयार रहना चाहिए। समाधान प्राप्त करने से पूर्व इकाइयों के अव्यवहार्य होने तक प्रतीक्षा करने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं होती है। जब अर्थव्यवस्था एक बड़े रूपांतरण से गुजर रही हो तो कंपनियों एवं औद्योगिक समूहों की पुनर्संरचना प्रतिक्रयात्मक प्रक्रिया के बजाय पूर्व क्रियात्मक होनी चाहिए।

9.7.1 सरकार की भूमिका

दीर्घकाल में औद्योगिक सफलता के लिए बेहतर संस्थाओं, न्यून क्रय-विक्रय लागतों (या व्यवसाय करने की लागतों), कीमत परिवर्तनों की जवाबदेह, बाजारों एवं कुशल एवं उचित तकनीक की उपलब्धि की आवश्यकता होती है। विकासशील देशों में इन दशाओं का सृजन केवल बाजार द्वारा नहीं किया जा सकता क्योंकि साधन एवं उत्पाद बाजार प्रायः लुप्त होते हैं। (आधारभूत ढाँचे को सम्मिलित करते हुए) सार्वजनिक वस्तुएँ आवश्यकता से कम मात्रा में दी होती हैं तथा तकनीकी एवं अनुसंधान एवं विकास (R & D) में बाजार असफलताएँ अत्यधिक होती हैं।

अतः उदारीकृत वातावरण में भारतीय उद्योग के लिए सरकार की भूमिका कम नहीं बल्कि और भी अधिक बनी रहती है। जिसमें परिवर्तन होना है वह सरकारी हस्तक्षेप की प्रकृति के व्यावसायिक गतिविधि के प्रत्येक पहलू को विकसित एवं नियमित करने में प्रयासरत संरक्षण देने के रूप में होने से हटकर उद्योग के लिए एक सक्रिय एवं उत्तरदायी प्रोत्साहक होना होता है।

इसे सुविधा पहुँचाने के लिए नीतिगत ढाँचा ऐसा होना चाहिए जिसमें केंद्र बिंदु आधारभूत ढाँचा सेवाओं के वाणिज्यीकरण में वृद्धि, विदेशी एवं घरेलू निजी क्षेत्र दोनों की सहायता करने के लिए उपयुक्त वैधानिक, नियमनात्मक एवं प्रशासकीय ढाँचे का निर्माण करने एवं आधारभूत ढाँचे की वित्त व्यवस्था के लिए नया एवं प्रवर्तनकारी वित्तीय कीमत में कटौती प्रारंभ करना होता है।

राजकोषीय, मौद्रिक एवं व्यापार नीतियों में पूरक कार्यवाही की आवश्यकता होती है। वांछित रणनीति के महत्त्वपूर्ण शब्द प्रावैगिकता एवं तीव्र वृद्धि होनी चाहिए। सरकार के पास उपलब्ध समाधानों की सीमा सीमित होती है तथा इसके लिए तुरंत कार्यवाही की जानी चाहिए। कार्यवाही न होना अथवा उद्योग की समस्याओं का विलम्बित प्रत्युत्तर केवल उद्योग के मालिकों को ही नहीं बल्कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था को हानि पहुँचायेगा।

बोध प्रश्न 3

1) औद्योगीकरण के ढाँचे से आपका क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

2) औद्योगीकरण के कार्यात्मक ढाँचे से आपका क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

3) भारत में औद्योगिक विकास प्रक्रिया की अवांछित विशेषताओं को बताइए।

.....

.....

.....

9.8 सारांश

पिछले कुछ वर्षों में किये गये नीतिगत परिवर्तनों ने विकास प्रक्रिया में औद्योगीकरण के आधुनिकीकरण की भूमिका को सुदृढ़ बना दिया है। आगे देखने पर यह कार्य वस्तुतः दो तरफा है :

अ) योजना के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संसाधन उपयोग की उत्पादकता को अधिकतम करने के उद्देश्य से उपक्रमों की पुर्नसंरचना एवं सुदृढ़ीकरण;

ब) भविष्य की तकनीकों पर आधारित आधुनिकीकरण को तीव्र करना, ताकि उद्योग को और अधिक तीव्र विकास की स्थिति में ले जाया जा सके।

अतिरेक श्रम की बात का समाधान किये बिना औद्योगिक वृद्धि के गुणात्मक रूप से नये ढाँचे में परिवर्तन संभव नहीं हो सकता है। अतः एक ऐसे नये दृष्टिकोण को विकसित करना वांछनीय है जो श्रमिकों के अधिकारों को मान्यता प्रदान करता है तथा उन्हें उपयुक्त प्रोत्साहन प्रदान करता है।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1) 1951 से औद्योगिक उत्पादन में प्रवृत्तियों की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए। उन उपयुक्त तत्त्वों की समीक्षा कीजिए जो इस प्रवृत्ति के लिए जिम्मेदार हैं।

2) देश के औद्योगिक विकास में कमियों की व्याख्या कीजिए। तीव्र औद्योगिक वृद्धि के लिए आप कौन-से सुझाव देंगे?

3) उदार आर्थिक नीति शासन प्रणाली के पिछले दो दशकों की अवधि में औद्योगिक वृद्धि दर एवं ढाँचे का विश्लेषण कीजिए। ये प्रवृत्तियाँ उत्पाद–विशेष क्षमता वाली लाइसेंस प्रणाली के दौरान प्रवृत्तियों से किस प्रकार भिन्न हैं?

4) भारत में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था की औद्योगिक संरचना में कौन-से परिवर्तन हुए हैं। व्याख्या कीजिए। भारत में औद्योगिक विकास के ढाँचे में कमियों की विवेचना कीजिए।

5) वृद्धि की दर एवं उत्पादन की संरचना के संबंध में स्वतंत्रता से भारतीय औद्योगीकरण की वृहत् प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए। क्या भारतीय औद्योगिक विकास पर आर्थिक उदारीकरण का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है?

6) भारत में अनुसरण की गई भारी उद्योग प्रधान आयात प्रतिस्थापन रणनीति के पक्ष में अब तक का परीक्षण कीजिए। 1991 से भारत में आर्थिक सुधारों के औद्योगिक वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव का मूल्यांकन कीजिए।

9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Alfaro, Laura and Anusha Chari (2009): *India Transformed?* (National Bureau of Economic Research).

2) Asian Development Bank (2009): *Trade Policy, Industrial Performance, and Private Sector Development in India* (New Delhi, Oxford University Press).

3) Basu, Kaushik (ed.) (2011): *The Oxford Companion to Ecommics in India* (New Delhi, Oxford University Press).

4) Bhagwati, Jagdish N. (2008): *Sustaining India"s Growth Miracle* (New Delhi, Stanza).

5) Subramaniam, Arvind (2008): *India Turn, Understanding the Economic Transformation* (New Delhi, Oxford University Press).

6) Virmani, Arvind (2009): *The Sudoko of India"s Growth* (New Delhi, Business Standard).

9.11 शब्दावली

सार्वजनिक क्षेत्र : इसके अंतर्गत वे उत्पादन इकाइयाँ सम्मिलित होती हैं जिनका स्वामित्व एवं नियंत्रण सरकार द्वारा किया जाता है।

भारी उद्योग : ये उत्पादन इकाइयाँ किसी पूँजीगत वस्तु का उत्पादन करती हैं।

औद्योगीकरण : यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत एक अर्थव्यवस्था के गुरुत्व केंद्र को कृषि से उद्योग को और परिवर्तित कर दिया जाता है।

मंदी : यह आर्थिक गतिविधियों में असाधारण गिरावट को संदर्भित करती है।

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 9.2.1 देखें

2) उपभाग 9.3.1 देखें

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 9.4.1 (II) देखें

2) उपभाग 9.4.1 (B) देखें

3) उपभाग 9.4.1 देखें

बोध प्रश्न 3

1) भाग 9.5 देखें

2) उपभाग 9.5.1 देखें

3) भाग 9.6 देखें।